IJAER/July- August- 2021/Volume-10/Issue-1 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक कुरीतियों पर एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Ms. Gita Rajvanshi
Ph.D. Schoar
Department of Hindi
Malwanchal University
Indore(M.P.)

Dr. Surksha Bansal
Supervisor
Department of Hindi
Malwanchal University
Indore(M.P.)

सार

प्रेमचन्द स्त्री–पुरुष के जीवन में सन्तुलन चाहते थे। तत्कालीन समाज में नारी को समुचित स्थान प्राप्त न था। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से नारी को एक विशिष्ट स्थान प्रदान किया। घर की चारदीवारी पार से निकलकर उन्होंने नारी को समाज–सेवा में लगा दिया। अब वह कर्मभूमि में पुरुषों से कन्धे–से–कन्धा मिलाकर चलने लगी। राजनीतिक क्षेत्र में उतरकर राष्ट्रीय आन्दोलन में भी स्त्रियों ने अपना पूरा सहयोग दिया।

सामाजिक बुराइयों के लिए आर्थिक विषमता भी बहुत कुछ जिम्मेदार होती है। प्रेमचन्द की दृष्टि इस पहलू पर सर्वाधिक थी। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि समाज का बहुत बड़ा भाग शोषित है जिसे उसके पसीने के कमाई भी पाने का हक नहीं है। दूसरी ओर एक ऐसा भी वर्ग है जो उन्हीं मजदूरों एवं कृषकों के खून–पसीने की कमाई के बल पर ऐशो–आराम की जिन्दगी जी रहा है तथा उन्हीं पर असहनीय अत्याचार भी कर रहा है। इनके विरुद्ध प्रेमचन्द जी आजीवन लड़ाई लड़ते रहे। रंगभूमि उपन्यास को सामन्तवाद एवं पूँजीवाद के बीच के अन्तराल का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। जॉनसेवक नयी पूँजीवादी सभ्यता का प्रतीक है और सूरदास महात्मा गांधी के आदर्श के साथ ही वह मानवीय गुण–दोषों से युक्त एवं उनके प्रति सचेष्ट रहने वाला व्यक्ति है। जो कार्य महात्मा गांधी राजनैतिक क्षेत्र में कर रहे थे, वही कार्य प्रेमचन्द जी साहित्य के माध्यम से कर रहे थे। प्रेमचन्द प्रथम साहित्यकार हैं, जिन्होंने यह कहा कि देश के हजारों किसानों का आन्दोलन जब तक राष्ट्रीय आन्दोलन नहीं होगा, तब तक स्वाधीनता नहीं मिल सकती है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से ग्रामीणों में, जन–सामान्य में नवीन चेतना तथा स्वाधीनता की अग्नि

प्रज्वलित की। प्रेमचंन्द के सभी उपन्यासों को एक स्थान पर यदि रखें तो समझें यह कि सम्पूर्ण समाज ही एक स्थान पर फलीभूत हो उठा है।

प्रमुख शब्दः– आन्दोलन, राष्ट्रीय और पूँजीवाद।

प्रस्तावना

हिन्दी के प्रारम्भिक समय आदिकाल में तो गद्य विधा ही नाम मात्र थी। भक्ति काल और रीतिकाल में कोई खास कार्य गद्य विधाओं पर नहीं हो पाया। इस प्रकार आधुनिक काल ही गद्य की अनेक विधाओं का जन्मदाता है। सही में हिन्दी उपन्यास का आरम्भ सन् 1870 ई. के आस–पास ही हुआ है। अतः हिन्दी की इस प्रमुख विधा का आविर्भाव उन्नीसवीं शती के अन्तिम दौर में माना गया है। आधुनिक काल की विकसित गद्य विधाओं में उपन्यास का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्नीसवीं शती तक उपन्यास साहित्य पूरे यूरोप में समृद्ध हो चुका था। भारतीय भाषाएँ सीधे तौर पर अंग्रेजी के संपर्क में थी वहाँ इसका आरम्भ हिन्दी से पहले हो गया था। बांग्ला और मराठी ये दोनों ही भाषाएँ भी अंग्रेजी के संपर्क में थी। बांग्ला में शरतचन्द्र, बंकिमचन्द्र, रविन्द्रनाथ टैगोर आदि ने हिन्दी से पूर्व ही उपन्यास लेखन आरम्भ कर दिया था। यूरोप, इटली, इंग्लैण्ड में महत्वपूर्ण उपन्यासों की रचना हुई। अंग्रेजी और बांग्ला उपन्यासों की लोकप्रियता से हिन्दी साहित्य में इस विधा का श्रीगणेश हुआ। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती में प्रकाशित एक निबन्ध उपन्यास–रहस्य में इस बात को स्वीकार किया है कि उपन्यास के प्रचलन, विकास एवं सृजन का श्रेय पश्चिमी देशें के लेखकों को ही है जिससे प्रेरणा लेकर हिन्दी में भी उपन्यास रचना की जाने लगी हैं।

उपन्यास हिन्दी साहित्य की गद्य विधाओं में एक प्रमुख विधा के तौर पर मानी जाती है। हिन्दी उपन्यास का उदय आधुनिक काल में ही हुआ है। हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यासों को लेकर विद्वानों में बहुत मतभेद रहा है। इस सम्बन्ध में जिन दो उपन्यासों को लेकर मतभेद हैं उनमें एक तो श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत भाग्यवती सन् 1877 ई. और लाला श्रीनिवास दास कृत परीक्षा गुरु सन् 1882 ई. है। प्रथम उपन्यास में भाग्यवती के चरित्र के सद्व्यवहार और सेवा के महत्व पर बल देते हुए लेखक की सुधारवादी प्रवृति परिलक्षित होती है। भाग्यवती अपनी शिक्षा के बल पर सामाजिक अंधविश्वासों, पाखण्ड़ों, कुरीतियों से अपने साथ–साथ समाज की रक्षा करती है।

प्रेमचंद की साहित्य सम्बन्धी मान्यताएँ

कथाकार प्रेमचन्द ने न केवल उपन्यास, कहानियाँ लिखीं, बल्कि निबन्ध तथा नाटक भी लिखे, जिसमें उन्होंने साहित्य की मान्यताओं को स्थापित किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि साहित्य की सभी विधाओं में जीवन की व्याख्या और आलोचना होनी चाहिए। इसीलिए वे साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना कहा।

"साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है। चाहे वह निबन्ध के रूप में हो, चाहे कहानियों या काव्य के रूप मैं। उससे हमें जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।"

प्रेमचन्द जी साहित्य में सच के उद्घाटन पर बल देते थे। वे साहित्य की भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर होने के हिमायती थे। साहित्य वही है जो पाठक के दिल और दिमाग को गहराई से छुये। उनकी मान्यता है कि "साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप में सही अवस्था में तभी उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गयी हो।

साहित्य वही है जिसमें उच्च चिन्तन, स्वाधीनता का भाव हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो सौन्दर्यात्मक ढंग से बुराइयों के प्रति संघर्ष करने की शक्ति प्रदान करे।

हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गाती और संघर्ष की बेचौनी पैदा करे, सुधार नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है। साहित्य को वे सदा समाज सापेक्ष मानते थे। वे यह नहीं चाहते थे कि जनजीवन की वास्तविकताओं से विमुख होकर रचनाकार कल्पना–लोक में विचरण कर व्यक्तिवादी चिन्तन का पोषण करे। इसीलिए वे व्यक्तिवादी पोषण रचनाकारों की भर्त्सना करते थे।

सम्पादक के रूप में प्रेमचंद

मर्यादा

प्रेमचंन्द 22 फरवरी, 1922 को मारवाड़ी स्कूल से इस्तीफा देकर बनारस लौट आये। यहाँ पर बाबू शिवप्रसाद गुप्त ज्ञानमण्डल से मर्यादा नामक एक मासिक पत्र निकालते थे, जिसके सम्पादक बाबू सम्पूर्णानन्द जी थे। दुर्भाग्यवश असहयोग आन्दोलन के चलने के कारण बाबू सम्पूर्णानन्द जी पकड़े गये और इस प्रकार स्थानापन्न सम्पादक के रूप में प्रेमचंन्द की नियुक्ति हुई। प्रेमचंन्द मर्यादा के सम्पादक बनकर काफी खुश थे, परन्तु यह खुशी ज्यादा दिनों तक होठों पर न रह सकी और जुलाई के महीने में आकर उनकी मर्यादा वाली नौकरी खत्म हो गयी। 7 जुलाई, 1922 को मुंशी जी ने निगम साहब को सूचना दी कि यहाँ ज्ञानमण्डल से अलहदा हो गया। बाबू साहब ने स्टाफ कम कर दिया है। लेकिन मी जी की दूसरी जगह काम दिलाने का बाबू साहब यानी बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने पूरा ख्याल रखा।

सरस्वती प्रेस

प्रेमचंन्द जीवनपर्यन्त अपनी आजीविका के लिए संघर्ष करते रहे। कभी बनारस, कभी प्रतापगढ़, आखिरकार वे इससे तंग आ गये थे और उन्होंने प्रेस खोलने का निश्चय किया।

सच बात इतनी ही थी कि अब वह किसी की गुलामी नहीं करना चाहते थे, आजाद होकर घर बैठना चाहते थे, लिखना–पढ़ना चाहते थे। प्रेस हो जायगा तो मेरी भी नमक–रोटी की सूरत हो जायगी। गाँव के दस–बीस लोगों की परवरिश का सिलसिला हो जायगा और फिर अखबार निकलेंगे, सस्ती–सस्ती किताबें निकालेंगे, लोगों में जागृति पैदा होगी.....और भगवान जाने क्या–क्या होगा जो सब बौड़पने की बातें हैं। आखिरकार 22 अप्रैल, 1923 के अपने खत में उन्होंने निगम जी (दयानारायण निगम) को लिखा– "आज प्रेस के लिए मकान तय हो गया। मशीन आ गयी। टाइप, ब्लाक, लकड़ी के केस वगैरह पहुँच गये।

प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक कुरीतियां

प्रेमचंद युग एक प्रकार से भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग है। सन् 1918 से 1936 तक का काल विभिन्न राजनीतिक आन्दोलन का केन्द्र रहा, जिसके परिणामस्वरूप समाज की वर्ण–व्यवस्था के आधारों में भी परिवर्तन आया। इसके पूर्व तक सदियों की दासता के कारण भारतीय जनता आत्मकेन्द्रित होती हुई

रूढ़िग्रस्त होती गयी थी। पाश्चात्य साम्राज्यवादियों के आगमन ने देश में एक विराट तूफान खड़ा कर दिया। जिसके कारण पीढ़ियों से सुप्त जनता की चेतना शनैः शनैः जागृत होने लगी थी। पाश्चात्य मूल्यों पर आधारित शिक्षा ने देश के बौद्धिक पक्ष को आन्दोलित किया। फलतः भारतीय मनीषी अपने परिवेश की त्रासपूर्ण विघ्नकारी स्थिति के प्रति सजग हुए और उसके व्यापक सुधार की आवश्यकता की ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ। सत्ता के सम्बल से ईसाई धर्म प्रचार को भी बल मिला। ये पाश्चात्य जीवन पद्धति की गरिमा और भारतीय सांस्कृतिक निस्सारता का प्रसार करने लगे। राजनीतिक दासता के साथ–साथ इस सांस्कृतिक आक्रमण ने भारतीय चिन्तकों को और भी अधिक आन्दोलित किया।

फलतः भारत के बुद्धिजीवियों और समाज सुधारकों को अपने देश की कमजोरियों को दूर करने का बोध हुआ। परिणामस्वरूप भारतीय पुर्नजागरण का व्यापक आंदोलन प्रारम्भ हुआ। राजाराममोहन राय से लेकर प्रारम्भ हुई समाज सुधार की कड़ी में स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, गोपालकृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी इसमें श्रृंखलाबद्ध होते गये। इन सभी ने देश के गौरवशाली अतीत से मूल्यवान तत्वों को खोजकर उन्हें नये जीवन के अनुरूप ढालने का प्रयास किया, भले ही तत्कालीन युग के सभी साहित्यकार बुद्धिजीवी किसी एक विचारधारा का अन्धानुकरण न कर रहे हों, तथापि इनके आस–पास के वातावरण में राजनीतिक, सांस्कृतिक बदलाव उमंगें भर रहा था। और इनके चेतन अचेतन मन में युगपुरूषों का प्रभाव भी संचारित हो रहा था। तत्कालीन लगभग समस्त साहित्यकारों पर गाँधीवाद का प्रभाव पड़ा, जिससे वे सामाजिक समस्याओं का निराकरण कर रहे थे।

पारिवारिक सम्बन्ध

प्रेमचंन्द ने अपने विभिन्न उपन्यासों के माध्यम से पारिवारिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला है। सुखी दाम्पत्य जीवन, दुःखी दाम्पत्य जीवन, भाई–भाई के सम्बन्ध, सास–बहू के सम्बन्ध, नन्द–भावज के सम्बन्ध आदि विषयों पर उनके अनुभव लिपिबद्ध हुए हैं। पति–पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध दाम्पत्य–जीवन ही पारिवारिक जीवन का मूलाधार है। स्त्री तथा पुरुष के वैवाहिक जीवन में आने पर ही परिवार की स्थिति प्रकट होती है। पति–पत्नी में परस्पर स्नेह और सहयोग की भावना रहने पर ही पारिवारिक जीवन सुखी होता है।

जिस परिवार में पति एवं पत्नी में परस्पर उक्त सन्तुलन का अभाव होता है, उस परिवार में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। जिनके अनेक कष्टों का प्रादुर्भाव हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि स्त्री–पुरुष समाज का महत्त्वपूर्ण अंग हैं, दोनों के ही कन्धों पर सामाजिक व्यवस्था का भार है और यदि यह आधार कहीं भी कम पड़ता है तो सामाजिक व्यवस्था के साथ न्यायसंगत नहीं होगा।

कई उपन्यासों में मुंशी प्रेमचंन्द जी ने पति–पत्नी के सम्बन्धों का वर्णन किया है। प्रतिज्ञा उपन्यास में प्रेमचंन्द ने कमला प्रसाद और सुमित्रा के माध्यम से पति–पत्नी के आपसी प्रेम एवं टकराव का वर्णन किया है। प्रेमचंन्द का मानना है कि पति–पत्नी के स्वभाव में समानता ही एक स्वस्थ परिवार एवं समाज का आधार–स्तम्भ है, पर यदि उनके स्वभाव में परस्पर विषमता का माहौल बना रहेगा तो परिवार में प्रायः कलह का अखाड़ा बना रहेगा, जो सामाजिक न्याय की दृष्टिकोण से उचित नहीं है।

"सुमित्रा में नम्रता, विनय और दया थी, कमला में घमण्ड, उच्छृखलता और स्वार्थ। एक वृक्ष का जीव था, दूसरा पृथ्वी पर रेंगने वाला। उनमें मेल कैसे होता। धर्म का ज्ञान जो दाम्पत्य जीवन का सुख मूल है, दोनों में किसी को न था। यदि विचारों में समानता नहीं होती तो पारिवारिक माहौल सुखमय कैसे होगा।

विधवा–समस्या, पारिवारिक एवं सामाजिक दशा तथा विवाह

प्रेमचंन्द के समय विधवाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। दहेज–प्रथा के दुष्परिणामस्वरूप अनमेल विवाह तीव्र गत से सम्पन्न हो रहे थे, जिससे विधवाओं की संख्या अनुदिन बढ़ती जा रही थी। उनकी पारिवारिक व सामाजिक दशा भी अत्यन्त शोचनीय थी। समाज में तो उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता ही था, परिवार में भी शुभ अवसरों पर उन्हें दूर रहने का आदेश प्राप्त था। विधवाएँ हर तरह से तिरस्कृत थीं। कामी पुरुष भी उनके साथ दुराचरण करते थे। विधवा–विवाह निषेध होने के कारण युवती विधवाओं के सम्मुख केवल दो मार्ग थे– मृत्यु का आलिंगन अथवा वेश्यावृत्ति अपनाना। बाल–विधवाओं की स्थिति तो और भी दर्दनाक थी। उस समय परिवार तथा समाज में कुछ ऐसी भी विधवायें थीं, जिन्हें अपने विवाह का भी स्मरण नहीं था। बलात् लाद दिये गये वैधव्य को वे अनायास ढोये जा रही थीं। प्रेमचंन्द ने विधवाओं की उक्त स्थितियों का सूक्ष्म निरीक्षण किया तथा अपने उपन्यासों में उनकी समस्याओं को उठाया तथा उनका समाधान भी निकालने का यथासम्भव प्रयास करने के संकेत भी दिये। उन्होंने स्वयं बाल–विधवा शिवरानी देवी से विवाह कर विधवा–विवाह को प्रोत्साहित किया।

तद्युगीन समाज में विधवाओं के सामने सबसे पहले पेट पालने का प्रश्न आकर खड़ा हो जाता था। नारी–शिक्षा के अभाव में यह समस्या अत्यधिक गम्भीर हो गयी थी। पेट के लिए उन्हें आखिर किसी आधार या सम्बल की आवश्यकता अवश्य थी। संयुक्त परिवारों में दो रोटी खाने के लिए उन्हें अत्यन्त अपमानित होना पड़ता था। यदि विधवा समाज के अन्य किसी व्यक्ति का सहारा लेती थी तो श्प्रतिज्ञाश की विधवा पूर्णा की भाँति ठगी जाती थी।

विधवा के सम्मुख उस समय (लगभग इन दिनों भी) दूसरी समस्या थी–नैतिक समस्या। समाज हिन्दू–विधवाओं के दैनिक जीवन व आचार–व्यवहार का निरीक्षण–परीक्षण इतनी तीक्ष्ण दृष्टि से करता था, मानो हिन्दू–धर्म का सारा दायित्व उन्हीं के ऊपर हो। विधवा अच्छा कार्य करे अथवा बुरा, वह आलोचना की ही पात्र थी।

स्त्रियों की सामाजिक दशा

नारी सदैव एवं सर्वत्र मानव–परिवार का मुख्य आधार समझी गयी है। इसीलिए प्रत्येक राष्ट्र तथा समाज के सर्वांगीण विकास में वह मुख्य भूमिका का निर्वाह करती है। प्रेमचंन्द नारी के जीवन विकास की समस्त सुविधाओं को उपलब्ध कराने के पक्ष में हैं। उन्होंने नारी को अपेक्षाकृत अधिक शक्ति–सम्पन्न देखना चाहते हैं। दुर्बल नारी प्रेमचंन्द जी को कदापि स्वीकार नहीं है।

नारी के सर्वांगीण विकास के लिए सर्वप्रथम प्रेमचंन्द उसे पूर्ण शिक्षित देखना चाहते हैं, जब तक स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होंगी और सब कानून–अधिकार उनको बराबर न मिल जायेंगे, तब तक महज बराबर काम करने से ही काम नहीं चलेगा।

स्त्रियों के सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, आर्थिक तथा राजनैतिक उत्थान के लिए प्रेमचंन्द उनके लिए अनिवार्य शिक्षा के साथ–साथ समानाधिकारों के प्रस्तावों को सदैव अनुमोदन करते हैं। शारदा बिल के प्रस्तावक हरविलास शारदा को उन्होंने लिखा था–आपका यह इस प्रस्ताव जिस दिन पास होगा, करोड़ों महिलाएँ आपको हृदय से आशीर्वाद देंगी और आपकी सदैव कृतज्ञ रहेंगी। उन्हीं के साथ मैं भी आपका कृ तज्ञ हूँ।

प्रेमचन्द जी कहते हैं कि स्त्री न तो धन–दौलत है और न पशु। वह तो पुरुष के समान अस्तित्ववान चेतन प्राणी है। फिर हमारे पूर्ववर्ती धर्माधिकारियों ने स्त्री की परिगणना द्रव्य की श्रेणी में क्यों की, यह प्रश्न उन्हें सदैव कचोटता रहा है। परन्तु इसके साथ ही आधुनिकता के नाम पर क्लबों में स्त्रियों की फूहड़ निर्लज्जता, पुरुषों की भावशून्य स्त्री–पूजा, अंग्रेजी चाल–ढाल का हास्यजनक अन्धानुसरण, प्रदर्शन–लोलुपता, बनाव–श्रृंगार एवं अशिष्ट हास्य–कटाक्ष की प्रेमचन्द ने सर्वत्र निन्दा की है। प्रेमचन्द जी स्त्रियों के सामाजिक स्थिति पर चिन्ता व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि आज समाज में स्त्रियों की वही दशा है, जो प्रारम्भ से चली आ रही है। उसमें तिनके भर का भी फर्क नहीं पड़ा। पूर्णा और सुमित्रा के माध्यम से प्रतिज्ञा में उपन्यासकार इसी विषय को उठाते हैं।

उपसंहार

प्रेमचन्द के उपन्यास–साहित्य का कोई भी विवेचन उनकी भाषा के विवेचन के बिना अधूरा रहेगा। उपन्यास की भाषा का उद्देश्य उस औपन्यासिक संसार को मूर्त करना होता है जो कथाकार को अभिप्रेत होता है। प्रेमचंद के साहित्य में विदेशी शासन के विरुद्ध स्वाधीनता की लड़ाई का खुला चित्रण नहीं मिलता। उनकी कुछ उपन्यास में स्वदेशी, असहयोग, सविनय अवज्ञा, शराब बंदी आदि आंदोलनों का चित्रण अधिक प्रखर है। लेकिन उनके उपन्यासों में इनका चित्रण अप्रत्यक्ष रूप से ही हो पाया है। जमींदारों के विरुद्ध किसानों के आंदोलनों का नेतृत्व करने के अपराध में उनके नेताओं को सरकार का कोपभाजन बनना पड़ता है। उन पर मुकदमे चलाये जाते हैं। उन्हें जेल की सजा भोगनी पड़ती है। रंगभूमि, कायाकल्प और कर्मभूमि में जो सेवा समितियाँ हैं, उनका उद्देश्य सरकार का तख्ता पलटना नहीं है प्रेमचन्द के उपन्यासों का संसार मुख्यतः निम्न कृषक–वर्ग और मध्यवर्ग का है। कृषक–वर्ग के शोषण और अत्याचार की कहानी को पूर्णता प्रदान करने के लिए जमींदारों और राजाओं का भी चित्रण किया गया है। इस प्रकार आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक स्तरों को लेकर प्रेमचंन्द के कथा–संसार में बहुत वैविध्य पैदा हो जाता है। इस वैविध्य का मूर्तिकरण भाषा के कुशल रचनात्मक प्रयोग द्वारा ही सम्भव हो पाता है। अपनी शिक्षा–दीक्षा, आर्थिक–सामाजिक स्थिति या मनःस्थिति के अनुसार जिस पात्र को जैसी भाषा बोलनी चाहिए, प्रेमचंन्द उससे वैसी ही भाषा का प्रयोग कराते हैं। उन्होंने संवादों के सरल तथा व्यंग्यात्मक प्रयोग से सामाजिक अन्यायों पर गहरा प्रहार किया। साथ ही यह भी उजागर किया कि भाषा किस प्रकार बिना कहे कुछ कर गुजरती है। प्रेमचंन्द के उपन्यासों में सामाजिक न्याय और राजनीतिक की अभिव्यक्ति प्रबल रूप से की गयी

है। साहित्य को वे सदा समाज–सापेक्ष मानते थे। जन–जीवन की आवश्यकताओं से विमुख होकर कल्पना–लोक में विचरण करना उनका उद्देश्य न तो था, न ही वे साहित्य को मनोरंजन की वस्तु मानते थे। वे उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र मानते थे। मानव–चरित्र पर प्रकाश डालना उनके रहस्यों को खोलते हुए जीवन की विभिन्न समस्याओं को प्रस्तुत करना ही उनका उद्देश्य रहा है, जिससे वे पूर्णतः सफल भी रहे।

संदर्भ

- महात्मा गाँधी का वक्तव्य, डॉ० इन्द्रमोहन कुमार सिन्हा, प्रेमचंन्दयुगीन
- कर्मभूमि, प्रेमचंन्द, पृ0 121–122
- वही, पृ0 136
- गोदान, प्रेमचंन्द, पृ0 46
- वही, पृ० 259
- डॉ० इन्द्रमोहन कुमार, प्रेमचंन्दयुगीन भारतीय समाज, पृ0 248 से साभार
- सेवासदन, प्रेमचंन्द, पृ0 56
- गबन, प्रेमचंन्द, पृ0 174
- सेवासदन, प्रेमचंन्द, पृ0 167
- गोदान, प्रेमचंन्द, पृ0 263
- मुरली मनोहर सिंह रू प्रेमचंन्द, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2006, पृ. 133.
- प्रेमचंन्द रू मेरी पहली रचना.
- प्रेमचंन्द रू जमाना पत्र
- डॉ. नागेन्द्र रू हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 575–576.
- वही, पृ. 577.
- प्रो. विपिन चन्द्र रू भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, पृ. 46.
- गांधी जी और उनका वाद, पृ. 32.

- प्रेमचंन्द के आरम्भिक उपन्यास (मंगलाचरण), प्रेमा, पृ0 197
- प्रेमा, पृ0 198
- विनोद कुमार पाल रू राजनीतिक विचारधारा, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, .. प्रा०लि0, नई दिल्ली, पृ. 40.